CHETANA
International Journal of Education (CIJE)

Peer Reviewed/Refereed Journal
ISSN : 2455-8279 (E)/2231-3613 (P)

Impact Factor
SJIF 2024 - 8.029

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

टेराकोटा हस्तकला राजसमंद जिले के मोलेला गांव के विशेष संदर्भ में

डॉ.शक्ति सिंह राठौड़

सहायक आचार्य (समाजशास्त्र) Guest Faculty
राजकीय कन्या महाविद्यालय बड़ागुडा सोजत, जिला-पाली (राज.)
Email- shaktisinghrathod2@gmail.com, Mobile- 9001054675

First draft received: 15.05.2024, Reviewed: 25.05.2024, Final proof received: 26.05.2024, Accepted: 18.06.2024

सारांश

टेराकोटा पद्धति से जहां लोकदेवता और जनजातीय देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण किया जाता है -मोलेला गांव विश्व के कुछ गिने-चुने स्थानों में एक है। मोलेला को लोकदेवताओं का तीर्थ कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह गांव अरावली की पहाड़ियों में स्थित है जिसके एक और नाथद्वारा तीर्थ है तो दूसरी और राणा प्रताप की पुण्यभूमि हल्दीघाटी है। अरावली की पहाड़ियों में भील और गरासिया जाति के लोग बहुत है ये लोग अपने मन्दिरों और देवरों में प्रतिष्ठित करने हेतु मोलेला की बनी मूर्तियों ही ले जाते हैं। राजस्थान ही नहीं मध्यप्रदेश और गुजरात की आदिवासी जातियाँ भी इन मूर्तियों की ग्राहक हैं। यहाँ की मूर्तियाँ मजबुत और टिकाऊ होती है, इसलिए प्रतिवर्ष यहाँ सैकड़ों देवी देवताओं की प्रतिमाओं की बिक्री होती है। सिवाय रंग रोगन के मूर्ति को वर्षों तक कुछ नहीं बिगड़ता। इसलिए आदिवासी यहाँ के कारीगरों को ले जाकर दुबारा रंग रोगन करा लेते हैं।

मुख्य शब्द : *टेराकोटा हस्तकला, लोक-कला आदि.*

प्रस्तावना

लोक कलाओं में ऐसी कलाओं का अपना विशिष्ट स्थान होता है जिनका मूलाधार गांवों में होता है और जो लोक जीवन से जुड़ी होती है। हस्तकला अनादिकाल से चल रही है व यह एक परिवार से दूसरे परिवार में वंशानूगत रूप से चलाया जाता है। इन हस्तकलाओं को जीवित रखा है। राजस्थान की हस्तकलाओं के इतिहास में भी पिछले कुछ दशकों में एक विशेष प्रकार की हस्तकाला ने अपना विशिष्ट स्थान बनाया यह हस्तकला है। "टेराकोटा" वैसे तो इसका इतिहास विश्व की कई पुरानी सभ्यताओं से जुड़ा हुआ है, परन्तु सिन्धु घाटी की सभ्यता में भी इसका विद्यमान होने के प्रमाण मिलते है।[1]

टेराकोटा का उद्भव, विकास एवं निर्माण स्थल

टेराकोटा पद्धति से जहां लोकदेवता और जनजातीय देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण किया जाता है -मोलेला गांव विश्व के कुछ गिने-चुने स्थानों में एक है। मोलेला को लोकदेवताओं का तीर्थ कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह गांव अरावली की पहाड़ियों में स्थित है जिसके एक और नाथद्वारा तीर्थ है तो दूसरी और राणा प्रताप की पुण्यभूमि हल्दीघाटी है। अरावली की पहाड़ियों में भील और गरासिया जाति के लोग बहुत है ये लोग अपने मन्दिरों और देवरों में प्रतिष्ठित करने हेतु मोलेला की बनी मूर्तियों ही ले जाते हैं। राजस्थान ही नहीं मध्यप्रदेश और गुजरात की आदिवासी जातियाँ भी इन मूर्तियों की ग्राहक हैं। यहाँ की मूर्तियाँ मजबुत और टिकाऊ होती है, इसलिए प्रतिवर्ष यहाँ सैकड़ों देवी देवताओं की प्रतिमाओं की बिक्री होती है। सिवाय रंग रोगन के मूर्ति को वर्षों तक कुछ नहीं बिगड़ता। इसलिए आदिवासी यहाँ के कारीगरों को ले जाकर दुबारा रंग रोगन करा लेते हैं।

पकाई हुई मिट्टी के खिलौने टेराकोटा बर्तन कालीबंगा, आहड़ से 2500 वर्ष ई. पू. से 2000 ई. पू. के प्राप्त हो चुके है। बीकानेर संग्रहालय में तीसरी सदी के टेराकोटा विद्यमान है।[2]

मिट्टी की मूर्तियाँ और बर्तनों को आग में पकाने की कला ही "टेराकोटा" कहलाती है।[3]

टेराकोटा की सबसे बडी विशेषता है कि इसमें ओजार का प्रयोग नहीं किया जाता है। गीली चिकनी काली मिट्टी को अंगूलियों ही सुन्दर आकार और रूप प्रदान करती है।

टेराकोटा भी गुप्तकाल की एक मुख्य शाखा भी। गुप्तकाल की मिट्टी की मूर्तियाँ बनाने वाले कलाकार सुन्दर वस्तुएँ बनाते थे। इसलिए वे लोकप्रिय थे। मिट्टी की वस्तुएँ निर्धनों की कला बन गई। इस प्रकार गुप्तकाल सर्वसाधारण में भी लोकप्रिय बन गई। टेराकोटा मूर्तियाँ तीन प्रकार की है। देवता तथा देवियाँ पूर्लिंग तथा स्त्रीलिंग आकृतियाँ और पशुओं की छोटी आकृतियाँ तथा फुटकर वस्तुएँ आदि है जिसमें विष्णु, सूर्य, दुर्गा, गंगा और यमुना की आकृतियाँ बड़ी संख्या में प्राप्त हुई है। उन मिट्टी को आकृतियों को पकाने का काम कठिन रहा होगा और मध्य एशिया के विदेशियों की बहुत सी आकृतियाँ मिली है। राजघाट में पाई गई टेराकोटा मूर्तियाँ इतनी सजीव है कि मानो मिट्टी में गीत मुखरित हो उठे हो। डॉ. अग्रवाल का विचार है कि उस समय प्रचलित कला की आत्मा इन टेराकोटा की आकृतियों में पाई जाती है। गुप्तकाल के कलाकार के लिए यह कहा जाता है कि उसने जिस वस्तु को हाथ लगाया उसे अति सुन्दर बना दिया।[4]

टेराकोटा: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वैसे तो टेराकोटा की पद्धति राजस्थान में कोई चार हजार वर्ष पुरानी है, क्योंकि सिन्धु सभ्यता में इनके अवशेष मिले है। यह कला मोलेला गांव में 1300 वर्ष पुरानी मानी जाती है। किवदन्ती है कि देवनारायण जी जो राजा भोज के पुत्र और बगड़ावतों के बड़े भाई थे। भाईयों के युद्ध में मारे गये थे। देवनारायण जी ने अपनी युद्ध मृत्यु के बाद कई स्थानों पर "पर्चे" (चमत्कार) दिये। एक पर्चा देवनारायण ने मोलेला गाव के अन्धे प्रजापात (कुम्हार) को भी दिया था। देवनारायण ने अंधे कुम्हार से कहा था - तुम मैदान में जाकर विधि के साथ मेरी मूर्ति बनाना लोग देव की प्रतिमाएँ मंदिरों में देवरों में स्थापित करेंगे। और उससे मनोकामनाएँ पूरी होगी। तुम्हें आँख की रोशनी मिलेगी।[8]

एक अन्य किवदन्ती है कि ईश्वर ने मोलेला के कुम्हार को सिंगान बनाने की कला सिखाई थी। अन्य स्थानों के कुम्हार प्रयास करके भी सिंगान नहीं बना पाये। इसलिए मोलेला के लोग इसको वरदान मानते है।[9] परिवार में प्रतिमा का निर्माण मुखिया ही करता है - स्त्रियों और बच्चों तो रंग रोगन करने और सुखानें में ही सहायता देते है।[9]

निर्माण स्थल टेराकोटा

यह कला मोलेला गांव से निकल कर अन्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी है। यह मोलेला नामक गांव राजसमंद जिला से करीब 35 कि.मी. एवं नाथद्वारा से 12 कि.मी. दूर स्थित है। यह गांव इतिहास प्रसिद्ध खमनौर के पास स्थित है। उदयपुर संभाग मुख्यालय से इसकी दूरी लगभग 60 कि.मी है। उदयपुर से जोधपुर मार्ग पर ईसवाल चौराहा से हल्दीघाटी होकर यहाँ पहुंचा जा सकता है। मोलेला का प्राचीन नाम मोलेरा या 'मोरेला रहा है।[10] इसका विवरण महाराणा राजसिंह कालीन बही तथा भीमसिंह बहियों में भी मिलता है। यही पर महाराणा प्रताप से मुकाबला लेने आये मुगल सेनापति मानसिंह की सेना ने पड़ाव डाला था।[11]

मोलेला गांव की शौर्ययुक्त ऐतिहासिक महत्ता है वहीं दूसरी ओर यहाँ लोक मृणशिल्प के कला शौष्ठव की सांस्कृतिक दृढ परम्परा कला साधकों के लिए प्ररेणा स्त्रोत बनी हुई है। यहाँ अन्य जातियों के साथ-साथ कुम्हारों के घरों की बहुतायत है। ये कुम्हार ओसला गोत्र मारु मेवलिया प्रजापति कहलाते है।[12] ये पीढ़ी-दर-पीढी से मिट्टी के बर्तनों तथा लोक देवी-देवताओं की आकर्षक मूर्तियों के निर्माण का व्यवसाय करते है। इनके द्वारा बनाई कलात्मक मूर्तिया इस अंचल में हिंगाण या मूरत के नाम से प्रसिद्ध है। मोलेला गांव के कुम्हारों की विशेष प्रसिद्धी उनके द्वारा निर्मित इन्हीं मृणशिल्प के लिए है।[13]

मोलेला कुम्हारों द्वारा निर्मित मूर्तियें में कलात्मक दक्षता के साथ लोक-जीवन में प्रचलित विश्वास, श्रद्धा तथा आस्था का रूप भी दिखाई देता है जो दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। इन मूर्तियों के खरीददार अधिकांषतः भील, मीणा, गुर्जर, गरासिया तथा रेबारी जातियां होती है। मेवाड़ के उदयपुर जिले के बांकल, बुराट, कोटड़ा पानरवा, शेरा-नला, सिलालपट्टी आदि क्षेत्रों में बसे आदिवासियों और अन्य विभिन्न जातियों में मान्य लोक देवता की प्रतिमाओं का यहाँ सालों से निर्माण होता आया है। इसके अतिरिक्त गुजरात, काठियावाड़ बाँसवाड़ा तथा डूंगरपुर से भी ग्रामीण एवं जनजातियाँ मोलेला मूर्तियों को खरीदने आते हैं। विशेष तौर पर कार्तिक पूर्णिमा वैशाखी पूर्णिमा, भाद्रपद शुक्ला पंचमी तथा माघ शुक्ल पंचमी के अवसर पर इनकी प्रतिष्ठा हेतु इनको ले जाया जाता है। आदिवासी अंचल से भोपा अपने सहयोगियों के साथ यहा आकर मूर्ति को बड़ी श्रद्धा से श्वेत कपड़े में ढ़क कर सिर पर रखकर थाली, मादल तथा शंख वादन करते हुए ले जाते है और बदले में कीमत के अतिरिक्त नेग (रूपये, मक्की, गेहूँ, कपड़ा, नारियल, सिंदुर, तिलक आदि) भी देकर जाते हैं।[14]

टेराकोटा कला का धार्मिक एवं सामाजिक महत्त्व

हमारे ग्रामीण क्षेत्र में पूजे जाने वाले लोक देवता लोगों को दुःखों से छुटकारा दिलाते हैं। भूत प्रेतों की छाया और कुदृष्टि से मुक्त कराते हैं। उनकी खेती, घर परिवार और जीवन के ये देवी देवता रक्षक हैं ऐसी आस्था है। हर इलाके में इनकी पूजा पद्धति, व्रत विधान और विग्रह या मूर्तियों का रूप अलग-अलग देखने में आता है। इन देवी-देवताओं के प्रति लोगों की अटूट श्रद्धा है। अलग-अगल देवी देवता, अलग पूजा पद्धति हर एक का चढ़ावा भी अलग और अनुष्ठान पद्धति भी अलग तैंतीस करोड़ देवी देवताओं की कल्पना है। लोक जीवन में धर्मराज को देवनारायण तथा युधिष्ठिर के नाम से पहचाना जाता है। न्याय की कामना के लिए पूजा होती है। इन्हें मीठी पूजा (खीर-पूए,, मालपुए आदि) चढ़ाते हैं। इनके मन्दिर पर सफेद रंग का झण्डा लगा होता है। काला-गोरा, भैंरू एवं ताखाजी की मूर्तियां होती हैं। धर्मराज की चौकी शुक्रवार एवं शनिवार को होती है।[15]

भैंरूजी को महादेवजी का पुत्र मानते हैं, इसलिए वे जनेऊ पहनते हैं। जब शिवजी के श्वसुर दक्ष ने यह किया था, तो शिवजी को नहीं

बुलाया था। यज्ञ में विघ्न डालने के लिए तब शिवजी ने अपनी जटा से भैंरू को उत्पन्न किया था। ऐसी लोक श्रुति है।[16]

काले भैंरु को रोद्र रूप वाला देवता मानते हैं इनकी पूजा बकरे की बलि और मद्य की धार चढ़ाकर की जाती है। उनकी पूजा चामुण्डा माता के साथ होती है। गौरे भैंरू की पूजा धर्मराज के साथ होती है। इनकी कमर में घूंघरू होते हैं तथा मन्दिर में तेल का दीपक जलाते हैं उनके साथ में कुत्ता होता है। जो इनकी सवारी का प्रतीक माना जाता है। काले भैंरू के चार हाथ होते हैं। जिसमें त्रिशूल, गुरज, खप्पर और ढाक होते है। गाँवों में मान्यता है कि महाराणा प्रताप चित्तोड़ से चेतक पर भागकर हल्दी घाटी आये और अकबर की फौज शाही बाग में पड़ाव डाले बैठी थी तब शक्ति ने महाराणा को कहा था कि- "यदि बादशाह को मारना चाहते हो तो मेरे साथ आओ।" उसने बादशाह को चिर निद्रा में सुला दिया और महाराणा को वहां से ले गई। बादशाह को सोया देखकर महाराणा ने उनकी आधी मूंछे काट दी और एक पट्टे पर लिख दिया कि - "मैं क्षत्रिय हूँ सोये पर वार नहीं करता। अपनी खैरियत चाहते हो तो कल लौट जाओ, वरना मार दूंगा।[17]

सर्पदंश का जहर उतारने के लिए नाग देव की पूजा होती है। इन्हें गोगाजी, गातोड़जी आदि नामों से भी जाना जाता है। इनके दूध और केशर चढ़ती है। इनकी चौकी शुक्र, शनि और रविवार को होती है। कृष्णजी ने कालि नाग के फन काट दिए थे। नागिन को बहन बनाकर नाग का एक फन उसके लिए छोड़ दिया था। उत्तरी-पश्चिमी राजस्थान में नाग के साथ दोनों ओर उसकी, पत्नियां भी बनती हैं। खेतों और जंगलों में काम करने वाले सभी जातियों के लोग इन्हें पूजते हैं।

धर्मराज के साथ साडू माता की पूजा होती है। इन्हें कृष्ण जी की मां मानते हैं। मालवा के रहने वाले कहते है एक बार साडू माता पालना रखकर जंगल गई। लौटी तो एक शेरनी कृष्णजी को दूध पिला रही थी। शेरनी ने कहा, मैं पहले भी तीन अवतारों में दूध पिला चुकी हूँ। साडू माता ने कृष्णजी को उल्टी करा दी। वहां चांदी की खान बन गई। एक मालीजी रहा था उससे वचन लिया था" तुम खान खोदकर खाना, पैसे के बदले मत बेचना।" इसी स्थान पर साडू माता का एक मात्र मन्दिर है। आजकल इसे मांगरूप कहते है। साडू माता के चाहने पर ही माल (कढी) निकलता है। इस कढ़ी को पेट दर्द में भी पिलाते हैं। साडू माता की मूर्ति में दोनों हाथों में कृष्ण होते हैं। इसको घोड़ों की रक्षक मानते हैं। राजपूत और गायरी मुख्य रूप से पूजते हैं।[18]

देवियों के बारे में एक और किंवदन्ती चलती है। सतयुग में पाताल से एक "बडल्या हिन्दवा" लाया गया था जिस पर सब देवियाँ झूमती रहती थी। कलयुग में कुछ मांसाहारी हो गई, तो इनमें फूट पड़ गई। कहते हैं कि किसी काले सिर वाले को नहीं छोड़ा। अलग-अलग हो गई। सबकी अलग-अलग कुल देवी के रूप में प्रगट हुई। "खेड़े खेड़े चामुण्डा, गौत्र-गौत्र में दियाडी हूँ मैं अंकन कुंआरी।" चामुण्डा भैंसे की सवारी, दुर्गा शेर की, कालका भैंसे की सवारी, अम्बामाता हाथी की सवारी 78 मुण्डों की माला के साथ करती है। इनकी रोज सेवा पूजा होती है। मन्दिर गांव से बाहर होता है तथा चौका में त्रिशूल गाड़ा जाता है। चामुण्डा मन्दिर में एक कोड़ा और एक माला भी होती है। राजपूत विशेष रूप में पूजते हैं। कालका को काल के लिए भी पूजते हैं। त्रिशूल मन्दिर के ऊपर लगाते हैं। इनके अलावा मच्छी माता (जिनसे हनुमान का पुत्र पैदा हुआ) हंस माता (सरस्वती) आदि कुल देवियाँ, ब्राह्मण एवं भील लोग पूजते हैं। मच्छी माता के शंख, चक्र, सांप होते हैं। एक हाथ आशीर्वाद की मुद्रा वाला होता है। हंस माता, डाहणां भीलों की कुल देवी है। मूर्ति के हाथों में सितार या वीणा, कमल, पुस्तक और आशीर्वाद की मुद्रा होती है।[19]

कोटड़ा और गोगुन्दा की ओर भील, ढोली, मेघवाल, बलाई आदि शूर माता की पूजा करते हैं। इस देवी की सुअर की सवारी होती है। बालदिया भाट और बनजारे बैलमाता को पार्वती के अवतार के रूप में पूजते हैं। यह बैल पर सवारी करती है। गुजरात के मीणें और गायरी साण्डमाता को कुलदेवी के रूप में पूजते हैं। इसी प्रकार 52 गोत्रों की बावन कुल देवियों अलग-अलग सवारियों पर बैठी रहती हैं और पूजी जाती हैं। नागणैसर को राजपूत लोग कुल देवता के रूप में पूजते है मन्दिर में भगवा झण्डा होता है। हाथों में नाग, त्रिशूल, ढाक और खप्पर। गाँवों में देवी-देवताओं के अलावा साहस के कार्यों के लिए भी कई लोगों की पूजा होती है।

'रेबारी' को पशुओं के रक्षक के रूप में पूजते हैं। यह गायें चराता था। एक बार नींद आ गई और गायों को चोर ले गए। वापिस लौटा तो मां ने ताना मारा कि गायों को वापस नहीं लाया तो मानूंगी कि मैं बांझ ही थी। बहन ने कहा" ऐसे भाई से तो बिना भाई के ही ठीक।" पत्नी ने कहा "मेरे कपड़े तुम पहन लो साफा मुझे दे दो।" रेबारी 350 चोरों से लड़कर गायों को वापिस ले आया। भील इसकी पूजा करते हैं। इसे 'एडा जी' भी कहत हैं। ढोला-मारू को ऊंट की सवारी के साथ भील लोग पूजते हैं। यह भाला और ढाल लिए रहती है। इसको ऊंटों का रखवाला मानते हैं। साल में एक बार पूजा होती है। सबको उस दिन मन्दिर पहुंचना पड़ता है। चाहे वे पशुओं को चराने कहीं भी गए हों।[20]

श्रवण कुमार का मन्दिर नहीं होता पर राखी के दिन पूजा होती है दरवाजे के दोनों तरफ इसको बनाया जाता है।[21]

भुला और मेहन्दू गो गूजर, भील, रावत, जाट आदि जाति के लोग पूजते हैं। ये 24 बगड़ावतों की कथा के विशेष पात्र दो भाई हैं।[22]

शेर शिकारी की मूर्ति में शिकारी के हाथ में तीर कमान होते है भील इन्हें जानवरों की रक्षा के लिए पूजते हैं। ग्रामीण धर्मपरायण पंखी घोड़ा को सूर्य की सवारी मानकर पूजते हैं। खासतौर पर सूर्यवंशी राजपूत तो पूजते ही हैं। पाबू राठौड़ के सात सवंत होते हैं। घोड़े के आगे एक देवली और एक हाथ में फूल, एक में भाला। जमात वाले नाथ सम्प्रदाय के मानने वाले विशेष तौर पर इन्हें पूजते हैं। कहते हैं इन्होंने 12 बार लड़ाई जीतकर भारत पर राज्य किया था। देवरी, चित्तोड़ और कोठारिया के पास प्रसिद्ध स्थान है। इनकी एक मूर्ति में दो पुतलियाँ होती हैं। इसी प्रकार कुंवार बाबा, पंखी के दो भैले (कामधेनु), पंच मुखी आदि कई अन्य देवी-देवताओं पर ग्रामीणों की आस्था है। मोलेला में इन सभी लोक देवी-देवताओं की मूर्तियां बनती है। इनकी लम्बाई दो, चार या आठ बालिश्त होती है। अधिक

छोटी बनाने पर लोक देवताओं की वास्तविक छवि विस्तृत रूप से नहीं उभर पाती है।

मोलेला गांव के कुम्हारों में एक नया जागरण आ रहा है, ये समय की मांग को पहचानने लगे है और परम्परा के साथ नये शिल्प को आगे बढ़ाने के प्रयोगों में लगे है। आज पंच सितारा होटलों, कला भवनों, संस्थानों, अकादमियों रंगशालाओं के गलियारों टेराकोटा की मूर्तियों से सज्जित होने लगे है यह फेशन बढ़ता जा रहा है।

संदर्भ

1. हरि महर्षि, राजस्थान के हस्त शिल्प, पृ. 1
2. बालकृष्ण राव, राजस्थान के भ्रमण, पृ. 84
3. हरि महर्षि, राजस्थान के हस्तशिल्प, पृ. 1
4. वी. डी. महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 545-546
5. मोहनलाल कुम्हार, साक्षात्कार।
6. हरि महर्षि, राजस्थान के हस्तशिल्प, पृ. 2
7. मोहनलाल कुम्हार, साक्षात्कार।
8. मोहनलाल कुम्हार, साक्षात्कार।
9. हिम्मत लाल कुम्हार, साक्षात्कार।
10. महेन्द्र भानावत, मेवाड़ लोक समृद्धि का लोकांचल प्रकाशित लेख, वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप समिति, उदयपुर, पृ. 189
11. गोरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 210-211
12. हिम्मत लाल कुम्हार, साक्षात्कार।
13. गोरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 210-211
14. जयसिंह नीरज, भगवती लाल शर्मा, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, पृ. 222
15. गुलाब कोठारी, राजस्थान की ग्रामीण कलाएं एवं कलाकार, पृ. 2
16. मोहन लाल कुम्हार, साक्षात्कार।
17. गुलाब कोठारी, राजस्थान की ग्रामीण कलाएं एवं कलाकार, पृ. 3
18. वही, पृ. 3
19. सावित्री परमार, लोक संस्कृति के शिखर, पृ. 78
20. वही, पृ. 4
21. पन्नालाल मेघवाल, राजस्थान शिल्प सौन्दर्य के प्रतिमान, पृ. 60
22. जयसिंह नीरज, भगवती प्रसाद शर्मा, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, पृ. 222